THE STUDY
An Institute for IAS

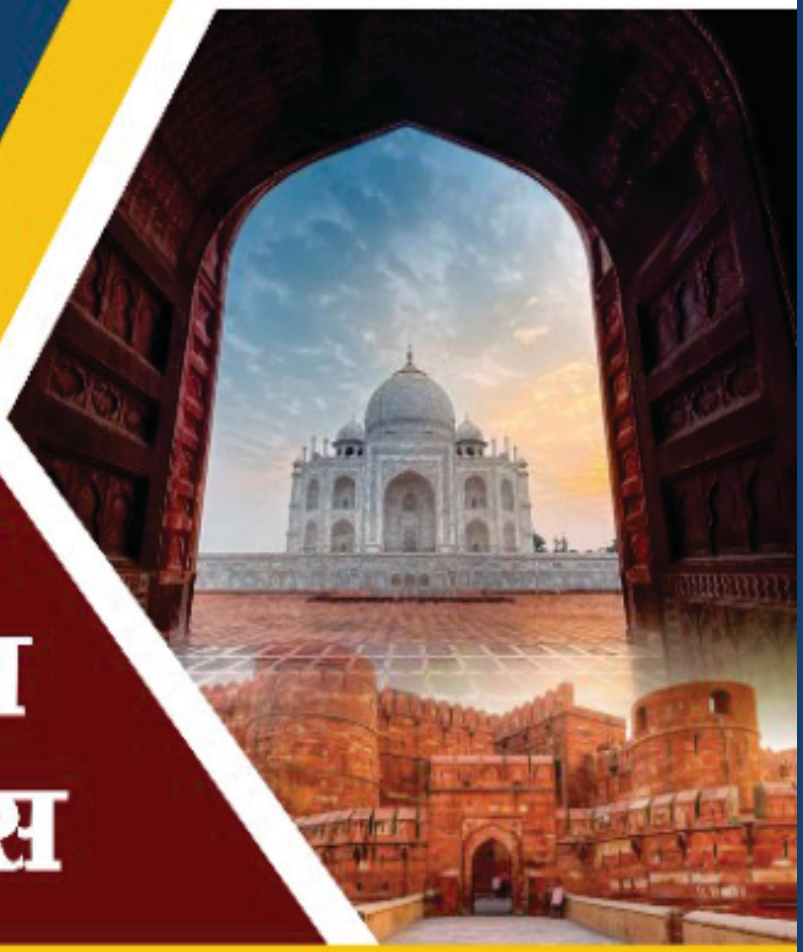

मध्यकालीन भारत का इतिहास

मणिकांत सिंह

विषय सूची

क्र. सं.	अध्याय	पृष्ठ संख्या
1.	मध्यकालीन भारतीय इतिहास के अध्ययन के स्रोत	01
2.	अरबों की सिंध विजयः प्रभाव एवं महत्व	11
3.	भारत में तुर्कों का आगमन	14
4.	दिल्ली सल्तनत	17
5.	दिल्ली सल्तनतः प्रशासन, अर्थव्यवस्था एवं समाज	57
6.	दिल्ली सल्तनतः कला एवं संस्कृति	76
7.	भक्ति एवं सूफी आंदोलन	90
8.	क्षेत्रीय राज्यःविजयनगर एवं बहमनी राज्य	111
9.	मुगलकालः राजनीतिक इतिहास	127
10.	मुगल प्रशासन	169
11.	मुगलकालीन अर्थव्यवस्था	183
12.	मुगल शासकों की दक्षिण नीति	198
13.	मुगल संस्कृति	201
14.	मुगल साम्राज्य का पतन	217
15.	18वीं सदी का विवाद	219
16.	मराठा	222

अध्याय 03

भारत में तुर्कों का आगमन

एक तुर्की अधिकारी सुबुक्तगीन ने 10वीं सदी के अंत में गजनी में एक छोटे से राज्य को संगठित किया। उसने मध्य एशिया के कुछ क्षेत्र तथा सिंधु नदी के आस-पास के क्षेत्र पर कब्जा कर गजनी के राज्य का विस्तार किया। सुबुक्तगीन की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र महमूद 998 ई. में गजनी का राजा बना। राज्यारोहण के समय उसकी अवस्था मात्र 27 वर्ष की थी। महमूद गजनवी ने गजनी के राज्य को एक साम्राज्य में तब्दील कर दिया। उसने ख्वारिज्म, सीस्तान (पश्चिमी एशिया) आदि क्षेत्र पर कब्जा किया। उसके विस्तार की मुख्य महत्वाकांक्षा मध्य एशिया में ही थी। वस्तुत: **मध्य एशिया में तुर्कमेनिस्तान आदि क्षेत्र चीन एवं भूमध्य सागरीय क्षेत्र** के बीच व्यापारिक मार्ग पर अवस्थित थे। अत: **इस क्षेत्र का विशेष आर्थिक महत्त्व** था। पश्चिम एशिया में प्रसार के लिये उसको व्यापक धन की आवश्यकता थी जिसके लिये वह भारत की तरफ देख रहा था। अत: भारतीय भू-भाग पर उसने अनेक आक्रमण किये।

भारतीय भू-भाग पर उसने सर्वप्रथम हिंदूशाही वंश के विरुद्ध आक्रमण किया तथा इस वंश के पतन तक निरंतर उसका आक्रमण होता रहा। **महमूद को हिंदू शाहीवंश की राजधानी उद्भंडपुर से अतुल सम्पत्ति** की प्राप्ति हुई। उसने 1006-08 ई. में मुल्तान तथा पंजाब पर आक्रमण किया। मुल्तान में उसने अपने अधीन सुखपाल को शासक बनाया तथा यहाँ से भी प्रभूत मात्रा में धन को प्राप्त किया। 1009 में उसने अलवर स्थित नारायणपुर नामक प्रसिद्ध व्यापारिक शहर पर आक्रमण कर इसे खूब लूटा। महमूद ने भारत पर कुल 17 बार आक्रमण किया। 1010 ई. के पश्चात् उसने मंदिर क्षेत्रों को अपना निशाना बनाया क्योंकि अब तक वह मंदिरों की सम्पन्नता से परिचित हो चुका था। 1014 ई. में उसने थानेश्वर के चक्रस्वामी मंदिर पर हमला कर उसे लूट लिया। इसी प्रकार मथुरा, कन्नौज तथा सोमनाथ का उदाहरण भी लिया जा सकता है। महमूद गजनवी का सबसे प्रसिद्ध आक्रमण काठियावाड़ क्षेत्र में स्थित सोमनाथ मंदिर पर हुआ। यह मंदिर समूचे भारत में अपनी पवित्रता, गौरव तथा समृद्धि के लिये ख्यात था। महमूद को इस आक्रमण में प्रभूत मात्रा में धन प्राप्त हुआ।

वस्तुत: महमूद का भारतीय मंदिरों पर आक्रमण धन प्राप्ति की लालसा से प्रेरित था। उस काल में मंदिरों में काफी धन एकत्रित होता था। अत: ये मंदिर शीघ्र ही आक्रमणकारियों को आकर्षित कर लेते थे। फिर भी मुस्लिम जगत में अपने विशेष स्थान को सुरक्षित करने के लिये उसने धन के साथ-साथ धर्म का भी उपयोग किया तथा बुतशिकन (मूर्ति भंजक) की उपाधि ली। किंतु चाहे उद्देश्य अथवा कारण जो हो महमूद गजनवी के उत्तर भारत के आक्रमण ने भारतीय जनता के मस्तिष्क पर एक गहरा मनोवैज्ञानिक प्रभाव छोड़ा जिसकी वजह से एक लंबे काल तक भारत में तुर्कों को आक्रमणकारी के रूप में ही देखा गया।

महमूद गजनी के आक्रमण का प्रभाव

- उत्तर-पश्चिम में सिंध और लाहौर के क्षेत्र का पश्चिम एशिया व मध्य एशिया के व्यापारिक केंद्रों से जुड़ना।
- लाहौर सांस्कृतिक आदान-प्रदान के केंद्र के रूप में विकसित हुआ। शेख-अल-हुज्जूरी जैसे सूफी संत का भारत में आगमन।
- महमूद गजनी के आक्रमण ने उत्तर भारत में तुर्की (मोहम्मद गोरी के अधीन) राज्य की स्थापना का रास्ता खोल दिया।

हिंदुस्तान पर नकारात्मक प्रभाव

- महमूद गजनी के आक्रमण ने हिंदुस्तान के लोगों पर गहरा मनोवैज्ञानिक प्रभाव पैदा किया। हिंदुस्तान में इस्लाम की छवि आक्रामक पंथ के रूप में बनी।
- उत्तर भारत में पहले से ही राजनीतिक अनेकता कायम थी। फिर महमूद गजनी के आक्रमण के पश्चात् राजनीतिक विघटन की प्रक्रिया को और भी अधिक बल मिला।

मॉडल प्रश्न

प्रश्न : महमूद गजनी के हिंदुस्तान पर आक्रमण के कारण एवं प्रभाव का परीक्षण कीजिए।

प्रश्न : महमूद गजनी के हिंदुस्तान पर आक्रमण के कारण एवं प्रभाव का समालोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

मोहम्मद गोरी की विजय के कारण

भारत में तुर्की आक्रमण का संगठित दौर गोरी आक्रमण से प्रारम्भ होता है। गोरी साम्राज्य का आधार उत्तर पश्चिमी अफगानिस्तान था। इसने मोहम्मद गोरी के काल में गजनी साम्राज्य का स्थान प्राप्त कर लिया। गजनी को अपना आधार बनाकर मोहम्मद गोरी ने भारत पर भी अनेक आक्रमण किये। इन आक्रमणों की अन्तिम परिणति दिल्ली सल्तनत की स्थापना के रूप में हुई। दरअसल, मध्य एशिया की राजनीति ने गजनवी की तरह मोहम्मद गोरी को भी भारत पर आक्रमण के लिए प्रेरित किया। अपने पूर्ववर्तियों की तरह गोरी को भी खुरासान तथा सर्ब के सम्पन्न क्षेत्रों पर नियंत्रण हेतु सेल्जुकों से निरन्तर युद्ध करना पड़ा था। परन्तु अपनी अत्यधिक वित्तीय माँग के कारण ये खुरासान में अलोकप्रिय हुए। सेल्जुकों तथा ऑक्सस पार की तुर्की जनजातियों के साथ अनवरत युद्ध के कारण गोरियों को भारत विजय का प्रयत्न करना पड़ा। तुर्की जनजातीय परम्परा में सत्ता की अनोखी भागीदारी की वजह से मोहम्मद गोरी को भारत विजय के लिए शक्ति तथा समय प्राप्त हो सका। इस समय भारत की राजनीतिक परिस्थिति किसी भी आक्रमणकारी के लिए सर्वथा अनुकूल भी थी क्योंकि यहाँ पर किसी केन्द्रीय सत्ता का अभाव था, खासकर उत्तर-पश्चिम के क्षेत्रों में।

मोहम्मद गोरी ने भारत के विरुद्ध अपना पहला सैनिक अभियान 1175 ई. में मुल्तान तथा उच्छ पर किया। फिर उसने 1205 ई. तक अपने साम्राज्य विस्तार तथा पूर्व विजित राज्य की रक्षा के लिए भारत पर अनेक आक्रमण किए। इन विजयों से उत्साहित होकर उसने 1178 ई. में गुजरात पर चढ़ाई कर दी, परन्तु गुजरात के प्रबल चालुक्य शासक भीम द्वितीय ने उसे बुरी तरह से पराजित किया। गुजरात में मिली पराजय ने गोरी की भारत-विजय की योजना को परिवर्तित कर दिया। अब वह समझ गया कि भारत-विजय का सही मार्ग पंजाब से होकर आएगा जहाँ पर अपेक्षाकृत कमजोर गजनी वंश का शासन था। अतः उसने 1179 ई. में पेशावर पर आक्रमण कर दिया। फिर लाहौर पर भी उसका अधिकार हो गया। गोरी द्वारा पंजाब पर किये गए नियंत्रण से उसकी दिल्ली के शासक पृथ्वीराज से संघर्ष की पृष्ठभूमि तैयार हो गई क्योंकि पृथ्वीराज गुजरात के शासक से पराजित होने के पश्चात् स्वयं उत्तर-पश्चिम की तरफ निगाह गड़ाए हुए था। दोनों शक्तियों के मध्य सीधा टकराहट तबरहिंद के किले को लेकर शुरू हुई। इस पर गोरी ने 1191 ई. में अधिकार कर लिया था। यह किला दिल्ली प्रशासन के लिए अत्यंत सामरिक महत्त्व का था। पृथ्वीराज ने इस स्थान के सामरिक महत्व को देखते हुए तथा तुर्कों को अपना पांव जमाने का मौका दिए बिना तुरन्त तबरहिंद की तरफ कूच किया तथा 1191 ई. में तराइन के प्रथम युद्ध में गोरी को भयंकर पराजय दी। परन्तु राजपूत शासक की रणनीति की सबसे बड़ी दुर्बलता रही कि उसने पराजित तुर्की सैनिकों को सम्पूर्ण रूप से पंजाब से निकालने का कोई यत्न नहीं किया। माना जाता है कि पृथ्वीराज तुर्की आक्रमण की प्रवृत्ति को समझने में असफल रहा तथा इसे मात्र सीमावर्ती झड़प ही मानता रहा। उसके पास यह समझने, कि गोरी शासक भी गजनी शासक की तरह मात्र पंजाब से सन्तुष्ट रहेंगे के कई कारण भी थे। पृथ्वीराज का यह निष्कर्ष उसके तथा भारत के शेष राज्यों के लिए विनाशकारी साबित हुआ क्योंकि इसी निष्कर्ष के तहत न तो उसने अपनी सैन्य-तैयारियों को पुनर्व्यवस्थित किया और न ही राजपूत राजाओं के संघ निर्माण का ठोस उपाय किया। इसका दुष्परिणाम अगले ही साल 1192 ई. में सामने आया, जब गोरी की पूरी तरह से व्यवस्थित सेना पुनः तराइन के मैदान में पृथ्वीराज से लोहा लेने के लिए खड़ी मिली। तराइन के दूसरे युद्ध में यद्यपि पृथ्वीराज ने राजपूत राज्यों का एक संघ बनाने का यत्न किया, परन्तु असफल रहा। उसकी सेना में दिल्ली के पृथ्वीराज समेत अनेक अधीनस्थ शासकों की सेना थी, तथापि यह मजबूती के बजाय कमजोरी का स्रोत ही बना। अंततः पृथ्वीराज की पराजय हुई। इस पराजय ने भारत के भीतरी प्रदेशों में तुर्की विस्तार का मार्ग प्रशस्त कर दिया। इस विजय ने राजपूत राज्यों के विनाश का मार्ग भी प्रशस्त कर दिया। यद्यपि कुछ समय के लिए गोरी ने सभी विजित क्षेत्रों के प्रशासन को तुरन्त अपने हाथों में नहीं लिया क्योंकि यह सुविधानजक नहीं था। जहाँ राजपूत शासकों ने उसकी प्रभुता को स्वीकार कर लिया, वहाँ उसे शासन करते रहने दिया गया। इसके बावजूद अब राजपूत राज्यों के लिए पुनर्संगठित होने का अवसर नगण्य ही रहा था। गोरी की भारत विजय किसी तुर्की आक्रमणकारी की अकस्मात विजय नहीं थी बल्कि यह एक शक्तिशाली विजेता के प्रयासों का परिणाम थी। जिसका स्पष्ट लक्ष्य था भारत में तुर्की राज्य की स्थापना करना।

भारत में तुर्की आक्रमण के समक्ष राजपूत राज्यों की पराजय के पीछे अनेक कारणों की तरफ विद्वानों द्वारा ध्यान केन्द्रित करने का प्रयास किया गया है। सल्तनत काल के इतिहासकारों ने तुर्की विजय को दैवीय कृपा माना है, जबकि दूसरे, परवर्ती काल तथा आधुनिक विद्वानों ने इसे तुर्कों की जातिगत श्रेष्ठता अथवा कुशल सैन्य नेतृत्व अथवा किसी विशेष क्षेत्र से सम्बद्ध होने का पक्ष रखा है। परन्तु इन कारणों पर अत्यंत सावधानीपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है क्योंकि तुर्की आक्रमण की सफलता को वर्तमान शताब्दी के हिंदू-मुस्लिम पूर्वाग्रह अथवा आधुनिक राष्ट्रीयता के दृष्टिकोण से

आकलित नहीं किया जा सकता है। वस्तुत: मध्यकालीन सामाजिक तथा सांस्कृतिक बोध का धरातल सर्वथा भिन्न था। तुर्की आक्रमण के समक्ष राजपूत राज्यों की पराजय के अनेक कारक थे जो **सैनिक, सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक महत्व के थे।**

तुर्की आक्रमण के समक्ष राजपूत राज्यों की पराजय के प्रमुख कारणों में राजनीतिक विघटन एवं प्रशासनिक शिथिलता की गणना की जाती है। दरअसल, गोरी आक्रमण के समय भारत छोटे-छोटे राजपूत राज्यों में विभाजित था। प्रत्येक राज्य का अपने क्षेत्र तथा जाति से गहरा लगाव था। इन राज्यों की राजनीतिक तथा प्रशासनिक व्यवस्था सामन्तवाद पर आधारित थी। **सामन्तवाद एक ऐसी प्रक्रिया** थी जिसके जरिये भू-राजस्व की उगाही एवं सेना पालन समेत प्रशासनिक अधिकार वंशानुगत भूमिधारियों को प्राप्त होता था। इस सामन्तों को नियंत्रण में रखना कठित होता था क्योंकि उपयुक्त अवसर मिलने पर वे हमेशा स्वतंत्र बनने की ताक में रहते थे। यद्यपि तुर्कों के बीच भी जनजातीय निष्ठाए हमेशा विद्रोह के खतरे का स्रोत बनी रहती थीं एवं स्थानीय कमान्डर स्वयं स्वतंत्र शासक बनने के प्रयास करते थे और फिर इसी प्रक्रिया से गजनवी एवं गोरी साम्राज्यों तथा सेल्जुक एवं ख्वारिज्मी जैसे अन्य साम्राज्यों का उद्‌भव भी हुआ, लेकिन इनमें से किसी भी साम्राज्य का अस्तित्व तब-तक बना रहा जब-तक वे किसी भी राजपूत राज्य से अधिक केन्द्रित रहे। पुन: इसका कारण इक्ता पद्धति का संचालन था जिसमें कमान्डर अथवा अमीर वंशागुनत नहीं, अपितु अपनी स्थिति की सुरक्षा के लिए वे सुल्तान की कृपा पर आश्रित रहते थे।

माना जाता है कि भारतीयों की गतिहीन सामाजिक व्यवस्था ने भी तुर्की आक्रमण की सफलता को अपनी तरह से प्रभावित किया। भारत की **सामाजिक व्यवस्था वर्ण-व्यवस्था** पर आधारित थी। इसमें निचले वर्ण के लोगों को राजनीति एवं सैनिक सेवा में मात्र निचले स्तर की भूमिका ही प्रदान की जाती थी। यद्यपि राजपूत सेना में भी जाट, मीणा आदि जैसे लड़ाकू समूह अथवा परवर्ती स्रोतों में कुवर्ण कहे जाने वाले समूह भी शामिल थे, तथापि समाज पर ब्राह्मणों तथा राजपूतों की नियंत्रणकारी भूमिका थी। दूसरी तरफ, सामाजिक दृष्टि से इस्लाम धर्म एक प्रगतिशील धर्म था, यद्यपि तुकों में भी नस्लीय श्रेष्ठता का गुण विद्यमान था तथा सत्ता पर संकीर्ण कुलीन वर्ग का प्रभाव स्थापित था, तथापि इनमें बंधुत्व एवं समानता की भावना प्रबल थी। तुर्कों की इस सफलता के पीछे काफी हद तक धार्मिक कारणों को भी रखा जा सकता है। माना जाता है कि धार्मिक विश्वास इस्लाम की एक अतिरिक्त शक्ति थी। तुर्की सैनिक इस्लाम धर्म के नाम पर युद्ध करते थे तथा राजनीतिक संघर्ष को जेहाद का रूप दे देते थे। धर्म के नाम पर मुसलमानों का संगठित होना भारतीय परिप्रेक्ष्य में प्रभावी सिद्ध हुआ। भारत इस समय धार्मिक संकीर्णता के दलदल में फँसा हुआ था। उच्च वर्ग की श्रेष्ठता की धारणा के कारण वे विदेशी क्षेत्रों से समुचित सम्पर्क स्थापित नहीं कर सके। इस अलगाववादी प्रवृत्ति की वजह से बाहरी देशों के नवीन राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा रण कौशल सम्बन्धी विकास के ज्ञान से भारतीय समाज अनुप्राणित नहीं हो सका।

तुर्कों की सफलता के लिए राजपूतों की सैनिक दुर्बलता को भी उत्तरदायी माना जाता है और ऐसा माना जाता है कि मुस्लिम तात्कालिक राजपूत शासकों की तुलना में सैनिक दृष्टि से अधिक सक्षम थे। यद्यपि नवीन शोध से ज्ञात होता है कि भारतीयों की तुलना में तुर्कों के पास श्रेष्ठ हथियार नहीं थे। भारत में 8वीं सदी से ही लोहे के रकाब का प्रयोग होने लगा था। तुर्की धनुष पर चलाए गए बाण लम्बी दूरी तक मार कर सकते थे, लेकिन भारतीय धनुर्धर भी अचूक तथा प्राण घातक निशाना लगाने में माहिर होते थे। भारतीय तलवार को विश्व में श्रेष्ठ माना जाता था। अगर तुर्की घोड़े फुर्तीले तथा अधिक तगड़े होते थे तो भारतीयों को हाथियों का लाभ मिला हुआ था। इन सबके बावजूद तुर्की सैन्य संगठन राजपूतों से बेहतर था क्योंकि वे मध्य-एशिया में विकसित तथा निरन्तर सफलतापूर्वक आजमाई हुई ़रणनीति तथा दांव-पेचों के इस्तेमाल में सिद्धहस्त थे। तुर्की सेनानायक जहाँ क्रमिक आक्रमण में विश्वास रखते थे, वहीं राजपूत सारी सेना एक ही साथ मैदान पर उतार देते थे। तुर्क लोग जहाँ पराजय की स्थिति में अपनी अधिकाधिक सेना को युद्ध मैदान से निकालने का प्रयत्न करते, वहीं राजपूत शासक अंतिम काल तक युद्ध भूमि में लड़ते-लड़ते प्राण त्यागना उचित समझते थे। आक्रमणकारी होने के कारण युद्ध के समय तथा स्थल का चुनाव अधिकांशत: तुर्कों की सुविधानुसार होता था, जबकि राजपूत किले पर आधारित अपनी रणनीति बनाते थे। राजपूत किले मजबूत तो होते थे, परन्तु बुरे वक्त में ये सुरक्षा-गृह की बजाय कारागार के रूप में तब्दील हो जाते थे जिनपर तुर्क अपने मंजनिक एवं अर्रादा नामक यंत्रों की सहायता से विजय प्राप्त कर सकते थे। तुर्कों को नवीन क्षेत्रों की विजय से धन, यश, राज्य आदि के प्राप्ति की आशा से भी भारी उत्प्रेरणा मिलती थी। इस प्रकार तुर्की आक्रमण के समक्ष राजपूत राज्यों की पराजय प्रत्येक क्षेत्रों में तुर्की व्यवस्था की श्रेष्ठता की विजय थी।

कुल मिलाकर उपर्युक्त वर्णित सभी कारकों ने यह तय कर दिया कि भारत जैसे समृद्ध तथा विस्तृत देश पर शासन की नई तकनीक आवश्यक है। तुर्कों ने इसे सही परिप्रेक्ष्य में समझा। अत: वे विजयी रहे।

अध्याय 08

क्षेत्रीय राज्य: विजयनगर एवं बहमनी राज्य

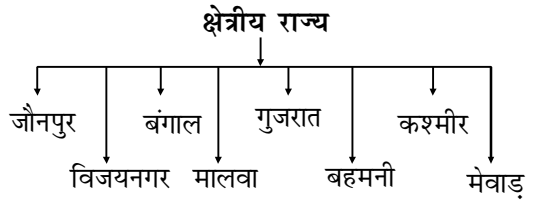

विघटन बनाम विकेंद्रीकरण

सल्तनत काल के समानांतर एवं उसके विघटन के पश्चात् क्षेत्रीय राज्य की स्थापना मध्यकालीन भारत के इतिहास लेखन का एक विवादास्पद मुद्दा रहा है। इसका कारण रहा है विद्वानों का साम्राज्य केंद्रित दृष्टिकोण। दूसरे शब्दों में, प्राय: साम्राज्य को प्रगति का सूचक और क्षेत्रीय राज्य को प्रगतिहीन एवं पतन का सूचक माना जाता रहा है, क्षेत्रीय राज्य की स्थापना को विघटन का परिणाम बताया जाता रहा है। परन्तु दो कारणों से वर्तमान में क्षेत्रीय राज्यों के उत्थान संबंधी अवधारणा बदलने लगी है।

प्रथम, बी.डी. चट्टोपाध्याय एवं हरमन कुलके जैसे विद्वानों ने आर. एस. शर्मा के विचार को चुनौती देते हुए यह दर्शाने का प्रयास किया है कि आठवीं सदी तथा उसके पश्चात् नए राज्यों का निर्माण राजनीतिक विघटन का परिणाम नहीं था, बल्कि नए क्षेत्रों में कृषि अर्थव्यवस्था के प्रसार तथा संसाधनों की उपलब्धता के कारण नए राज्यों के उद्भव का परिणाम था। यह प्रक्रिया 12वीं सदी में भी चलती रही थी।

द्वितीय, प्रजातांत्रिक विकेंद्रीकरण के काल में क्षेत्रीय राज्यों को पतन का सूचक नहीं माना जाता, बल्कि ऐसा माना जाता है कि क्षेत्रीय राज्य क्षेत्रीय लोगों की आकांक्षा को संतुष्ट करते हैं, क्षेत्रीय स्तर पर रोजगार देते हैं और कला एवं साहित्य को भी संरक्षण देते हैं।

अत: सल्तनत काल के अंत में क्षेत्रीय राज्यों की स्थापना क्षेत्रीय स्तर पर होने वाले नवीन विकास का परिणाम थी। इसने नए प्रकार के आर्थिक अवसर प्रदान किए जिनसे लाभ उठाकर क्षेत्रीय कुलीनों ने अपने आप को स्थापित करने और केंद्रीय सत्ता को चुनौती देने का कार्य किया।

अत: सल्तनत के अंत में बंगाल, जौनपुर, गुजरात, मालवा, बहमनी और विजयनगर, जो कभी साम्राज्य का हिस्सा रहे थे, स्वतंत्र राज्य के रूप में स्थापित हो गए। उसी प्रकार, कश्मीर, मेवाड़ आदि क्षेत्र, यद्यपि सल्तनत की सीमा से बाहर रहे थे, परंतु वहाँ भी शक्तिशाली राज्यों की स्थापना हुई। इनमें से कुछ राज्य, क्षेत्र विशेष की सीमा से बाहर निकलकर साम्राज्य बन गए। इनमें हम विजयनगर व बहमनी की चर्चा कर सकते हैं।

एक तरफ बंगाल, जौनपुर, मालवा, गुजरात, बहमनी और कश्मीर में मुस्लिम राजवंश स्थापित थे तो विजयनगर व मेवाड़ में हिंदू राजवंश।

अगर हम इन क्षेत्रीय राजवंशों की भूमिका व योगदान का मूल्यांकन करते हैं तो हमें निम्नलिखित बातों की सूचना मिलती है-

- अगर सल्तनत काल में हिंदू व इस्लामी संस्कृति के बीच आदान-प्रदान के परिणामस्वरूप समन्वित संस्कृति का विकास हुआ और इस्लाम का भारतीयकरण हुआ, तो इन क्षेत्रीय राजवंशों के अधीन समन्वित संस्कृति क्षेत्रीय संस्कृति के साथ घुल-मिल गई और इस्लाम का क्षेत्रीयकरण हुआ अर्थात् इस्लाम बंगाली, गुजराती व दक्कनी संस्कृति से मिश्रित हो गया। यह एक बड़ा कारण है कि हिंदुस्तान में पंजाब, बंगाल, गुजरात, दक्कन आदि क्षेत्रों में निवास करने वाले मुसलमानों के रीति-रिवाज व जीवन पद्धति में भी अंतर आ गया।
- क्षेत्रीय मुस्लिम शासकों के द्वारा उच्च आधिकारिक पदों पर बड़ी संख्या में हिंदुओं को लिया गया। उदाहरण के लिए, मराठा जमींदारों को पहले बहमनी राज्य और फिर आगे बीजापुर में उच्च पद प्राप्त हुआ। रूप और सनातन जैसे हिंदू अधिकारी बंगाल के शासक हुसैनशाह के अधीन तथा मानिकचंद व मोतीचंद जैसे हिंदू कुलीन गुजरात के शासक अहमद शाह की सेवा में रहे थे। उसी प्रकार, जौनपुर के शासकों ने भी हिंदू कुलीनों को अपनी सेवा में लिया।
- क्षेत्रीय राज्यों के द्वारा कला व साहित्य को प्रोत्साहन दिया गया। मुस्लिम शासकों ने भी क्षेत्रीय भाषा-साहित्य को संरक्षण दिया।

अध्याय 14

मुगल साम्राज्य का पतन

मुगल साम्राज्य के पतन ने, जो सफवी साम्राज्य, ओटोमन साम्राज्य तथा चीन के मिंग साम्राज्य के समानांतर पूर्वी विश्व का एक लब्धप्रतिष्ठित साम्राज्य था, विद्वानों तथा इतिहासकारों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। जाहिर है कि इस साम्राज्य के स्वरूप, केन्द्रीकरण तथा विकेन्द्रीकरण के उद्देश्य, आर्थिक उत्थान तथा अवनति जैसे मुद्दों का व्यापक स्तर पर परीक्षण किया जाने लगा।

आरंभ में इस पतन की व्याख्या शासकों की नीतियों तथा कार्यों एवं अमीर वर्ग की गतिविधियों के सन्दर्भ में प्रस्तुत की गयी। अर्थात् क्षेत्रीय स्तर पर होने वाले विद्रोहों को मुगल साम्राज्य के पतन का कारण करार दिया गया और फिर इन विद्रोहों को औरंगजेब की धार्मिक नीति तथा राजपूत नीति से जोड़ दिया गया। उसी प्रकार मुगल अमीर वर्ग की चरित्रहीनता एवं अयोग्यता को भी साम्राज्य के पतन का कारण करार दिया गया। किन्तु उपर्युक्त मत विश्वसनीय नहीं लगता। यद्यपि यह सही है कि औरंगजेब के काल में विघटन की प्रक्रिया को बल मिला तथा उसके कमजोर उत्तराधिकारी इस प्रक्रिया को नहीं रोक पाये। किन्तु इसे विघटन के लिए उत्प्रेरक तो माना जा सकता है, मगर विघटन का मूल कारण नहीं। उसी तरह यह सही है कि 18वीं सदी में अमीरों के बीच गुटबंदियों को बल मिला तथा प्रभावशाली मुगल अमीर भी अपने स्वहित से ही परिचालित होते रहे। किन्तु अमीरों को चरित्रहीन तथा अयोग्य करार देना उचित नहीं है क्योंकि इस काल में गाजीउद्दीन खान, फिरोज जंग, चिनकिलिच खान, मुर्शीद कुली खाँ जैसे महत्वपूर्ण अमीर भी मौजूद थे तथा इन अमीरों ने अपनी योग्यता को स्थापित किया था।

फिर यही वजह है कि मुगल साम्राज्य के पतन के कारणों का परीक्षण बहुत ही गहराई में जाकर किया जाने लगा और फिर इस सन्दर्भ में कुछ मूलभूत मुगल संस्थाओं का, जिन पर मुगल साम्राज्य का अस्तित्व टिका हुआ था, अध्ययन आरंभ हो गया। ये संस्थाएँ थीं – मनसब तथा जागीर व्यवस्था एवं भू-राजस्व व्यवस्था। इनके विश्लेषण के पश्चात् यह स्थापित किया जाने लगा कि मुगल साम्राज्य के पतन का कारण था – मनसब तथा जागीर व्यवस्था को बनाए रखने में मुगल शासकों की विफलता एवं कृषक असंतोष, जो मुगल जागीर व्यवस्था और भू-राजस्व व्यवस्था का अपरिहार्य परिणाम था। मोटे तौर पर इन्हें जागीरदारी संकट एवं कृषि संकट का नाम दिया गया।

मनसबदारी व्यवस्था एक दृष्टि से मुगल साम्राज्य का इस्पाती ढाँचा थी। किन्तु यह व्यावसायिक नौकरशाही का उदाहरण न होकर एक व्यक्तिपरक नौकरशाही ही बनी रही। मनसबदार व्यक्तिगत स्तर पर मुगल बादशाह से जुड़े हुए थे। फिर मनसबदारी पद्धति के माध्यम से ग्रामीण कुलीनों पर मुगल नौकरशाही को आरोपित करने का प्रयास किया गया था। किन्तु इस पद्धति की सफलता राज्य की इस योग्यता पर निर्भर करती थी कि वह कितने बेहतर ढंग से जागीर व्यवस्था का संचालन कर पाता है। जैसा कि हम जानते हैं कि आरम्भ से ही जमादामी तथा हासिलदामी के बीच अंतर पड़ने की समस्या रही थी। किन्तु जब औरंगजेब के काल में इस पद्धति का विस्तार दक्कन में हुआ तो फिर कई तरह की समस्याएँ उभर कर आईं। पहली समस्या थी-बेजागीरी क्योंकि दक्कन में मुगल उलझाव के कारण बड़ी संख्या में मनसबदारों की नियुक्ति की जा रही थी। वहीं दूसरी तरफ अन्य प्रकार के राजकीय खर्च को देखते हुए खालिसा भूमि का भी विस्तार किया जा रहा था। यही वजह है कि बाजीपुर और गोलकुण्डा की विजय के बाद भी जागीरों के कम पड़ने की समस्या बनी रही। दूसरे, दक्कन का क्षेत्र राजस्व के संग्रह की दृष्टि से विकसित नहीं था। इसके अतिरिक्त निरंतर युद्धों के कारण एक प्रकार की अव्यवस्था भी बरकरार थी तथा इस अव्यवस्था का फायदा क्षेत्रीय जमींदार उठा रहे थे। वे जागीरदारों के द्वारा राजस्व वसूली में परेशानी उत्पन्न कर रहे थे। इस वजह से अनेक जागीरों में हासिलदामी को बहुत कम पड़ने की समस्या आ गयी थी। इन जागीरों की पहचान जोर-ए-तलब जागीर के रूप में की गयी। उधर राज्य के द्वारा यह प्रयास किया जा रहा था कि अधिक से अधिक सैर हासिल जागीर (जहाँ हासिलदामी की बेहतर स्थिति हो) को खालिसा भूमि में शामिल किया जाए तथा अधिक से अधिक जोर-ए-तलब जागीरों का आबंटन मनसबदारों के बीच हो। इसके कारण मनसबदारों की सैन्य क्षमता दुष्प्रभावित हुई। इस संकट का एक महत्वपूर्ण पहलू था कि सैर हासिल जागीर प्राप्त करने के लिए मुगल अमीरों में परस्पर प्रतिस्पर्द्धा तथा गुटबंदी को प्रोत्साहन। औरंगजेब के काल में यह स्थिति बनने लगी थी। फिर, औरंगजेब के उत्तराधिकारियों के समय इस प्रवृत्ति को और भी बल मिला। बहादुरशाह प्रथम, जहाँदार शाह तथा फर्रूखसियर के काल में भी अपने समर्थकों के बीच जागीरों

का आबंटन चलता रहा। मुहम्मद शाह रंगीला के काल में भी इस प्रवृत्ति को बल मिला। फिर, मुगल बादशाह जागीर की कमी को पूरा करने के लिए अधिक से अधिक खालिसा भूमि को जागीर भूमि में तब्दील करने लगे। इसके परिणामस्वरूप उन्हें आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा। जब निजामुलमुल्क वजीर हुआ उसने खालिसा तथा जागीर व्यवस्था को पुनर्व्यवस्थित करने का प्रयास किया। किन्तु, इसके लिए जागीरों का पुनर्वितरण आवश्यक था। परन्तु, अमीरों के द्वारा इस कदम का विरोध किया गया। अत: इस नीति का क्रियान्वयन नहीं हो सका। इस प्रकार हम देखते हैं कि जागीर व्यवस्था के संकट ने मुगल साम्राज्य की चूल हिला दी।

कृषक असंतोष तथा क्षेत्रीय स्तर पर किसानों तथा जमींदारों का विद्रोह मुगल साम्राज्य के लिए महत्वपूर्ण चुनौती बनकर आया। जैसा कि हम देखते हैं कि आरंभ से ही किसानों तथा ग्रामीण कुलीनों ने मुगल साम्राज्य के आर्थिक दबाव को महसूस किया था क्योंकि अत्यधिक संसाधनों के दोहन के क्रम में मुगल साम्राज्य ने एक बड़े कृषि अधिशेष पर अपना दावा प्रस्तुत किया। फिर आगे कुछ अन्य कारकों ने कृषक विद्रोह को प्रोत्साहन दिया। इसका एक महत्वपूर्ण कारण था - जागीरदारी पद्धति की अन्तर्निहित दुर्बलता। दूसरे शब्दों में, जागीरदारों का समय-समय पर तबादला होता था। अत: अपनी जागीर भूमि के विकास में उन्होंने रूचि नहीं दिखायी। बदले में, उन्होंने अधिक से अधिक राजस्व का दोहन करने का प्रयास किया। फिर इसके कारण ग्रामीण कुलीन तथा किसानों पर आर्थिक दबाव बढ़ गया। फिर, उस काल में यूरोपीय निर्यात के कारण बड़ी मात्रा में चाँदी का आगमन हो रहा था। वहीं दूसरी तरफ विलासिता संबंधी सामग्रियों की भी कमी पड़ने लगी थी। अत: अर्थव्यवस्था पर स्फीतिकारी प्रभाव देखा गया। इसके परिणामस्वरूप जागीरदारों को अपना जीवन-स्तर बनाए रखने के लिए अधिक संसाधन की जरूरत पड़ी। फिर समय-समय पर पड़ने वाले अकाल ने समस्या को और भी संकटपूर्ण बना दिया। अब अत्यधिक भू-राजस्व के दबाव के कारण किसान या तो खेत छोड़कर भागने लगे या फिर जमींदारों के साथ मिलकर विद्रोह करने लगे। इसे 'कृषि संकट' का नाम दिया गया। 17वीं सदी में क्षेत्रीय स्तर पर होने वाले अनेक विद्रोह; यथा-जाट विद्रोह, सतनामी विद्रोह, सिक्ख विद्रोह, मराठा विद्रोह आदि कृषि संकट के परिणाम थे। इन विद्रोहों के परिणामस्वरूप क्षेत्रीय स्तर पर स्वतंत्र राज्यों की स्थापना होने लगी और फिर एक समय ऐसा आया कि मुगलों की सत्ता दिल्ली एवं आस-पास के क्षेत्र तक ही सिमट कर रह गयी। अन्त में, जब 1858 में ब्रिटिश ने बहादुर शाह जफर को गद्दी से हटाया तो, वह मुगल शासन की महज औपचारिक समाप्ति थी उसकी वास्तविक समाप्ति बहुत पहले ही हो चुकी थी।

अब प्रश्न उपस्थित यह होता है कि क्या मुगल साम्राज्य के विघटन की व्याख्या महज आर्थिक पतन के सन्दर्भ में ही की जानी चाहिए? यह प्रश्न इसलिए महत्वपूर्ण हो गया है क्योंकि हाल के शोधों में यह बात स्थापित की जा रही है कि कई बातों में 17वीं सदी का काल, जब मुगल साम्राज्य का विघटन हो रहा था, आर्थिक क्षेत्र में प्रगति तथा सकारात्मक परिवर्तनों का काल था। इस काल में नकदी फसलों के उत्पादन को प्रोत्साहन मिला। दूसरी तरफ यूरोपीय कंपनियों के आगमन के परिणामस्वरूप भारत में निर्यातोन्मुखी व्यापार को बल मिला। अत: इन परिवर्तनों के कारण विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक समृद्धि आयी। इस प्रकार के समृद्ध क्षेत्रों की पहचान बरेली, अवध, मुरादाबाद, बंगाल आदि के रूप में की जा सकती है। किन्तु इस आर्थिक समृद्धि ने क्षेत्रीय स्तर पर भिन्न प्रकार की राजनीति को प्रोत्साहन दिया। जैसा कि हम जानते हैं कि मुगल साम्राज्य की स्थापना के काल से ही क्षेत्रीय कुलीन इस साम्राज्य के दबाव को महसूस कर रहे थे तथा उससे मुक्त होने की बात सोच रहे थे। फिर जब 17वीं सदी में आर्थिक समृद्धि का काल आया, उनकी महत्वाकांक्षा प्रज्वलित हो गयी और फिर वे क्षेत्रीय स्तर पर अपना संगठन कायम करने लगे। तत्पश्चात् केन्द्रीय शक्ति की कमजोरी का लाभ उठाकर वे व्यावहारिक रूप में स्वतंत्र हो गए जबकि औपचारिक तथा प्रतीकात्मक रूप में उन्होंने मुगल साम्राज्य से अपना सम्पर्क बनाए रखा।

मुगल साम्राज्य के पतन की व्याख्या में उपर्युक्त कारकों के अध्ययन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इनमें किसी एक कारक को निर्णायक करार देना तथ्यों का सरलीकरण होगा। जैसा कि हम जानते हैं कि मुगल साम्राज्य भारतीय उपमहाद्वीप के एक बड़े क्षेत्र में फैला हुआ था। अत: इतने बड़े साम्राज्य के विघटन के लिए कोई एक कारक उत्तरदायी नहीं हो सकता, बल्कि इसके लिए एक से अधिक कारक उत्तरदायी रहे होंगे। आर्थिक अवनति अथवा पतन जिसने जागीरदारी संकट तथा कृषि संकट का रूप ले लिया, निश्चय ही एक महत्वपूर्ण कारण रहा था किन्तु इस तथ्य से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि कई क्षेत्रों में आर्थिक समृद्धि आई और फिर इस समृद्धि ने भी क्षेत्रीय स्तर पर जमींदारों एवं जागीरदारों की महत्वाकांक्षा को प्रेरित किया। इस प्रकार विघटन का कारण क्षेत्रीय स्तर पर होने वाला विद्रोह था। भले ही इस विद्रोह का कारण आर्थिक दबाव रहा हो अथवा आर्थिक समृद्धि। फिर, जब विघटन की प्रक्रिया चल रही थी तो औरंगजेब के कमजोर उत्तराधिकारी तथा आत्म-केन्द्रित मुगल अमीर वर्ग ने उस प्रक्रिया को रोकने के बजाय और भी तीव्र कर दिया।

❑❑❑

DOWNLOAD APPLICATION

for

HISTORY OPTIONAL COURSE (UPSC/PCS)

Separate Batches for Both

HINDI AND ENGLISH MEDIUM

GET IT ON Google Play

Manikant Singh

App Features

- Complete History Optional Course (for both Medium)
- Weekly Live doubt classes
- Modules wise Courses Available
- Printed Study Material Sent to Home via Post
- Free Weekly/Monthly Test
- Free Demo Videos
- Daily Translated Article of The Hindu, Indian Express etc.

OUR BATCHES

- Offline Batch
- Online Live Batch
- Audio-Visual Course
- Online Recorded Class
- Pen Drive Course

- Answer Enrichment Course
- Annual Practice Test Series

To download Our Application

Our website QR Code

OUR MAINS TEST SERIES PROGRAMME

UPSC | UPPCS | BPSC

Follow us: YouTube

TS PUBLICATIONS

210, Virat Bhawan, IInd Floor, Near Post Office, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-9

: 7683076934, 9999516388, 8287331431, 011-35009789 9999278966

: info@thestudyias.net • thestudyias@gmail.com

978-81-957117-8-9

9 788195 711789